श्रवणबेल्गोला के अभिलेखों में

जैन-तत्त्व-चिन्तन

श्री जगबीर कौशिक

जैन धर्म संसार के प्राचीन धर्मों में से एक है। देवेन्द्रमुनि[1] के अनुसार जैनाचार्य जैन धर्म को एक ऐसा उदार एवं लोकप्रिय धर्म बनाना चाहते थे, जिससे ब्राह्मण संस्कृति के अनुयायी भी आकर्षित हो पायें तथा जैन समाज मौलिक तत्वों में भी किसी प्रकार का विरोध न आए। यदि जैनेतर आचार्यों के द्वारा किसी प्रकार का विरोध आता था तो उसका जैनाचार्य शास्त्रार्थ के द्वारा परिहार करते थे। आलोच्य अभिलेखों में इस प्रकार के एकाधिक वर्णन प्राप्त होते हैं।[2]

धर्म का स्वरूप—पउमचरियं में[3] जीवों की दया और कषायों के निग्रह को धर्म कहा गया है। स्वच्छन्द प्रवृत्ति को रोकना निग्रह है। आलोच्य अभिलेखों में[4] इस प्रकार के निग्रह की स्थान-स्थान पर चर्चा आई है। मोह और क्षोभ से रहित आत्मा के शुद्ध परिणाम को भावप्राभृत[5] में धर्म माना गया है। अभिप्राय यह है कि मोक्ष को जैन परम्परा में धर्म माना गया है। आलोच्य अभिलेखों में मोक्ष का मुक्ति, कैवल्य, प्रमोक्ष इत्यादि शब्दों में उल्लेख किया गया है।[6]

आत्मा—दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो सदा प्राप्त हो वह आत्मा है। आलोच्य अभिलेखों में द्वादशात्मा[7] का उल्लेख हुआ है। सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र को मोक्ष का मार्ग माना गया है। इस रत्नत्रय के अभ्यास करने की विद्या या मत को स्याद्वाद या अनेकान्तवाद कहा जाता है। आलोच्य अभिलेखों में स्याद्वाद[8] और रत्नत्रय[9] की विविध स्थानों पर चर्चा हुई है।

नयवाद—सधर्मा दृष्टान्त के साथ ही साधर्म्य होने से जो बिना किसी प्रकार के विरोध के स्याद्वाद रूप परमागम में विभक्त अर्थ (साध्य) विशेष का व्यंजक (गमक) होता है, उसे नय कहते हैं।[10] आलोच्य अभिलेखों में नय का उल्लेख आया है[11] और इसके नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवम्भूत आदि सात भेद बतलाते हैं।[12]

नैगम--सामान्य विशेष के संयुक्त रूप का निरूपण नैगम नय है।

संग्रह—केवल सामान्य का निरूपण संग्रह नय है।

व्यवहार---केवल विशेष का निरूपण व्यवहार नय है।

ऋजुसूत्र—क्षणवर्ती विशेष का निरूपण ऋजुसूत्र नय है।

शब्द—रूढ़ि से होने वाली शब्द की प्रवृत्ति का अभिप्राय शब्द नय है।

---

१. साहित्य और संस्कृति, वाराणसी, १९७०, पृ० ५७
२. जैन शिलालेखसंग्रह, भाग १, ले० सं० ४९२, ३९/२, ५०
३. पउमचरियं, २६/३४
४. जै० शि० सं०, भाग १, ले० सं० ५४/२७
५. भावप्राभृत, ८१
६. जै० शि० सं०, भाग १, ले० सं० १०८/५८, १०५/७, १०५/५
७. वही, ले० सं० १०८/३६
८. वही, ५४/५४, ८२/१
९. वही, ५४/७१, ८२/४
१०. आप्तमीमांसा, १०६
११. जै० शि० सं०, भाग १, ले० सं० ५४/३
१२. वही, ११३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समभिरूढ़—व्युत्पत्ति से होने वाली शब्द की प्रवृत्ति का अभिप्राय समभिरूढ़ नय है।

एवम्भूत—वर्तमानकालिक या तत्कालभावी व्युत्पत्ति से होने वाली शब्द की प्रवृत्ति का अभिप्राय एवम्भूत नय है।

प्रमाण और उसका विषय—स्याद्वाद के अन्तर्गत प्रमाण, उसका विषय (प्रमेय) तथा नय की विवेचना की जाती है। तत्त्वार्थ सूत्र में सम्यग्ज्ञान को प्रमाण माना गया है। सम्यग्ज्ञान के पांच भेद होते हैं—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल। आलोच्य श्रवण-बेलगोला के अभिलेखों में इनमें से श्रुत[1] और केवलज्ञान[2] का उल्लेख हुआ है।

श्रुतज्ञान—जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार श्रुत ज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर निरूप्यमाण पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनता है या सुनना मात्र 'श्रुत' कहलाता है। तत्त्वार्थ सूत्र में श्रुत ज्ञान को परोक्ष प्रमाण माना गया है।[3] वह एक ज्ञान विशेष के अर्थ में निबद्ध है। पहले लेखनक्रिया का जन्म न होने के कारण, समूचा ज्ञान गुरुशिष्यपरम्परा से सुन-सुनकर ही प्राप्त होता था। शास्त्रों में निबद्ध होने के पश्चात् भी वह श्रुत संज्ञा से ही अभिहित होता रहा। जैनाचार्यों के अनुसार वे ही शास्त्र श्रुत कहलायेंगे, जिनमें भगवान् की दिव्य ध्वनि का प्रतिनिधित्व हुआ है।[4]

केवलज्ञान—केवल शब्द का अर्थ एक या असहाय होता है।[5] ज्ञानावरण का विलय होने पर ज्ञान के अवान्तर भेद मिटकर ज्ञान एक हो जाता है। फिर उसे इन्द्रिय और मन के सहयोग की अपेक्षा नहीं होती, इसलिए वह केवल कहलाता है। उमास्वाति ने केवलज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में विवेचन किया है।[6]

जैन परम्परा में सर्वज्ञता का सिद्धान्त मान्य रहा है। केवलज्ञानी केवलज्ञान उत्पन्न होते ही लोक और अलोक दोनों को जानने लगता है।[7]

केवलज्ञान का विषय सब द्रव्य और पर्याय है। मति को छोड़ शेष चार ज्ञान के अधिकारी केवली कहलाते हैं—श्रुतकेवली, अवधिज्ञानकेवली, मनःपर्ययज्ञानकेवली और केवलज्ञानकेवली।[8] इनमें श्रुतकेवली और केवलज्ञानी का विषय समान है। दोनों सब द्रव्यों और सब पर्यायों को जानते हैं। इनमें केवल जानने की पद्धति का अन्तर है। श्रुतकेवली शास्त्रीयज्ञान के माध्यम से तथा क्रमशः जानता है और केवलज्ञानकेवली उन्हें साक्षात् तथा एक साथ जानता है।

आलोच्य अभिलेखों में केवलज्ञान का पर्यायवाची 'अपवर्ग' शब्द भी प्राप्त होता है।[9] यह मूलतः न्याय दर्शन का शब्द है, न कि जैन दर्शन का। न्याय दर्शन के अनुसार अपवर्ग दुःखदायी जन्म से अत्यन्त विमुक्ति का नाम है।

पदार्थ के भेद—श्रवणबेलगोला के अभिलेखों में प्रमाण के विषय का पदार्थ शब्द से उल्लेख किया गया है।[10] श्रवणबेलगोला के आलोच्य अभिलेखों में यद्यपि पदार्थ के भेदों का स्वतंत्र रूप से उल्लेख नहीं हो पाया तथापि कर्म[11], निरस्तकर्म,[12] बद्धकर्म[13] आदि शब्दों से उनका परोक्ष रूप से उल्लेख हो जाता है।

कर्म का अर्थ है, जो जीव को परतन्त्र करे अथवा मिथ्यादर्शन आदि रूप परिणामों से युक्त होकर जीव के द्वारा जो उपार्जन किये जाते हैं, वे कर्म हैं।

आत्मा का मूल स्वरूप अनन्त दर्शन-ज्ञान-चारित्र-वीर्य रूप शक्ति का शाश्वत उज्ज्वल पिण्ड है। परन्तु इन पौद्गलिक कर्मों के कारण वह विकृत हो जाता है। कर्म के सन्दर्भ में जैनाचार्यों का कथन है कि जिस प्रकार पौद्गलिक मदिरा अमूर्तिक चेतना में विकार भाव उत्पन्न कर देती है। उसी प्रकार पौद्गलिक कर्म भी अमूर्त आत्मा को प्रभावित करते हैं। अविद्या, माया, वासना, मल, प्रकृति, कर्म, मोह,

---

१. जै० शि० सं०, ५४/३१, १०५/६, ८
२. वही, १०८/५८, १०५/७, १५
३. 'आद्ये परोक्षम्', तत्त्वार्थसूत्र, १/१०
४. संपा० जुगलकिशोर : आचार्य समन्तभद्र कृत समीचीन धर्मशास्त्र, वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली, १९५५, १/९, पृ० ४३
५. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ८४
६. 'प्रत्यक्षमन्यत्', तत्त्वार्थसूत्र, १/६
७. दशवैकालिकसूत्र, ४/२२
८. स्थानांगसूत्र, ३/५१३
९. जै० शि० सं०, भाग १, ले० सं० ८२/४
१०. वही, १०५/१८
११. वही, ५४/३३
१२. वही, १०५/३
१३. वही, १०८/७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादर्शन, अज्ञान—ये सभी शब्द समानार्थक हैं।

आचार—आलोच्य अभिलेखों में आचार संज्ञा का उल्लेख प्राप्त होता है।[1] जैन परम्परा में आचार और विचार को समान स्थान दिया गया है। अहिंसामूलक आचार एवं अनेकान्तमूलक विचार का प्रतिपादन जैन विचारधारा की विशेषता रही है। उपर्युक्त अभिलेखों में पञ्चाचार (श्रमणाचार)[2] और श्रावकाचार (एकादशाचार)[3] का उल्लेख हुआ है।

श्रमणाचार (पञ्चाचार)—श्रमण के व्रत महाव्रत अर्थात् बड़े व्रत कहलाते हैं। क्योंकि वह हिंसादि का पूर्णतः त्यागी होता है। श्रावक, उपासक, देशविरत, सागार, श्राद्ध, देशसंयत आदि शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। श्रावक के व्रत अणुव्रत अर्थात् छोटे व्रत कहलाते हैं क्योंकि वह हिंसादि का अंशतः त्याग करता है। सर्वविरति अर्थात् सर्वत्याग रूप महाव्रत पांच हैं—(१) सर्वप्राणातिपात-विरमण (२) सर्वमृषावाद-विरमण (३) सर्वअदत्तादान-विरमण (४) सर्वमैथुन-विरमण (५) सर्वपरिग्रह-विरमण। इन पांच महाव्रतों को ही श्रवणबेल्गोला के आलोच्य अभिलेखों में पञ्चाचार कहा गया है।[4] प्राणातिपात अर्थात् हिंसा का सर्वतः विरमण यानि पूर्णतः त्याग सर्वप्राणातिपात-विरमण कहलाता है। इसी प्रकार मृषावाद अर्थात् झूठ, अदत्तादान अर्थात् चोरी, मैथुन अर्थात् कामभोग और परिग्रह अर्थात् संग्रह अथवा आसक्ति का पूर्णतः त्याग क्रमशः सर्वमृषावाद-विरमण, सर्वअदत्तादान-विरमण, सर्वमैथुन-विरमण और सर्वपरिग्रह-विरमण कहलाता है।

श्रावकाचार—जैन आचारशास्त्र में व्रतधारी-गृहस्थ श्रावक, उपासक, अणुव्रती, देशविरत, सागार आदि नामों से जाना जाता है। चूंकि वह श्रद्धापूर्वक अपने गुरुजनों अर्थात् श्रमणों से निर्ग्रन्थ-प्रवचन का श्रवण करता है। अतः उसे श्राद्ध अथवा श्रावक कहते हैं। श्रमण वर्ग की उपासना करने के कारण वह श्रमणोपासक अथवा उपासक कहलाता है। अणुव्रतरूप एकदेशीय अर्थात् अपूर्ण संयम अथवा विरति धारण करने के कारण उसे अणुव्रती, देशविरत, देशसंयमी अथवा देशसंयत कहा जाता है। चूंकि वह आगार अर्थात् घरवाला है—उसने गृह-त्याग नहीं किया है। अतः उसे सागार, आगारी, गृहस्थ, गृही आदि नामों से पुकारा जाता है। श्रावकाचार से सम्बन्धित ग्रन्थों अथवा प्रकरणों में उपासक धर्म का प्रतिपादन तीन प्रकार से किया गया है—(१) बारह व्रतों के आधार पर (२) ग्यारह प्रतिमाओं के आधार पर (३) पक्ष, चर्या अथवा निष्ठा एवं साधन के आधार पर। उपासकदशांग, तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्ड-श्रावकाचार आदि में सल्लेखना सहित बारह व्रतों के आधार पर श्रावक धर्म का प्रतिपादन किया गया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने चारित्रप्राभृत में, स्वामी कार्तिकेय ने अनुप्रेक्षा में एवं आचार्य वसुनन्दि ने वसुनन्दि-श्रावकाचार में ग्यारह प्रतिमाओं के आधार पर श्रावक-धर्म का प्ररूपण किया है। इन एकादश श्रावकाचारों का आलोच्य अभिलेखों में भी उल्लेख मिलता है। कुन्दकुन्द[5] और वसुनन्दि ने[6] श्रावकों के ग्यारह भेदों का वर्णन किया है। दार्शनिक, प्रतिक, सामयिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत—ये श्रावकों के ग्यारह भेद होते हैं। इन ग्यारह प्रतिमाओं के आधार पर एकादश श्रावकाचार बतलाये गये हैं।

सल्लेखना—श्रावकाचारों में से एक आचार सल्लेखना भी है। जिसका आलोच्य अभिलेखों में उल्लेख हुआ है।[7] जीवन के अन्तिम समय में अर्थात् मृत्यु आने के समय तप विशेष की आराधना करना सल्लेखना कहलाता है। इसे शास्त्रीय परिभाषा में अपश्चिम-मारणान्तिक सल्लेखना कहते हैं। मारणान्तिक सल्लेखना का अर्थ होता है—मरणान्त के समय अपने भूतकालीन समस्त कृत्यों की सम्यक् आलोचना करके शरीर व कषायादि को कृश करने के निमित्त की जाने वाली सबसे अन्तिम तपस्या। सल्लेखनापूर्वक होने वाली मृत्यु को जैन आचार-शास्त्र में समाधिमरण कहा गया है। जब शरीर भारभूत हो जाता है तब उससे मुक्ति पाना ही श्रेष्ठ होता है। ऐसी अवस्था में बिना किसी प्रकार का क्रोध किए प्रशान्त एवं प्रसन्नचित्त से आहारादि का त्याग कर आत्मिक चिन्तन करते हुए समभावपूर्वक प्राणोत्सर्ग करना सल्लेखना व्रत का महान् उद्देश्य है।

ज्ञानाचार—अपनी शक्ति के अनुसार निर्मल किए गए सम्यग्दर्शनादि में जो यत्न किया जाता है, उसे आचार कहते हैं।[8] उपर्युक्त

१. जै० शि० सं०, १०५/२
२. वही, ११३
३. वही, १०८
४. वही, ११३
५. चरित्रसार, ३/३
६. वसुनन्दि-श्रावकाचार, ४
७. जै० शि० सं०, भाग १, ले० सं० ५४, १०८/६२
८. सागार-धर्मामृत, ७/३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचारों के अतिरिक्त सम्यग्दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार आदि पांच आचार[1] और बतलाये हैं। इनमें से आलोच्य अभिलेखों में ज्ञानाचार[2] का उल्लेख हुआ है।

तप और समाधि—सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र को धारण करने वाले साधु के द्वारा जो कर्मरूपी मैल को दूर करने के लिए तपा जाता है उसे तप कहते हैं।[3] श्रवणबेलगोला के आलोच्य अभिलेखों में तप[4] और उसके बारह प्रकारों (द्वादश तप)[5] का उल्लेख हुआ है।

जैनों ने 'अनेकार्थ निघण्टु' में 'चेतश्च समाधानं समाधिरिति गद्यते' कहकर चित्त के समाधान को ही समाधि कहा है।[6] उपर्युक्त अभिलेखों में समाधि[7] और उसके भेदों (सविकल्पक और निर्विकल्पक)[8] का एकाधिक बार उल्लेख हुआ है।

व्रत—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से निवृत्त होना व्रत है।[9] आशाधर के अनुसार किन्हीं पदार्थों के सेवन का अथवा हिंसादि अशुभ कर्मों का नियत या अनियत काल के लिए संकल्पपूर्वक त्याग करना व्रत है।[10] श्रवणबेलगोला के अभिलेखों में व्रत का कई स्थलों पर उल्लेख आया है।[11] एक अभिलेख में श्रावकों के अणुव्रत या एकदेशव्रत तथा साधुओं के महाव्रत या सर्वदेशव्रत—इन दो भेदों का उल्लेख मिलता हैं।[12]

देवी-देवता—आत्मा के ज्ञानरूप का दिग्दर्शन कराने वाला कोई जैनाचार्य या राजा ऐसा नहीं हुआ, जिसने भगवान् के चरणों में स्तुति-स्तोत्रों के पुष्प न बिखेरे हों। जैनों में देवी-देवताओं की पूजा-स्तुति होती रही है, ऐसा श्रवणबेलगोला के अभिलेखों के साक्ष्य से प्रमाणित होता है। आलोच्य अभिलेखों में अनेक जैन-अजैन देवी-देवताओं के उल्लेख मिलते हैं। इनकी सूची इस प्रकार है—धूर्ज्जट (शिव)[13], महेश्वर[14], वन-देवता[15], त्रिभुवनतिलक[16], शासनदेवता (चौबीस तीर्थंकर)[17], परमेश्वर[18], सरस्वती[19], पद्मावती[20] आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रवणबेलगोला के आलोच्य अभिलेखों में धर्म, दर्शन तथा आचार आदि से सम्बद्ध सामग्री उपलब्ध होती है परन्तु वह इतनी विवरणात्मक तथा स्पष्ट नहीं है जिससे धर्म, दर्शन तथा आचार के विविध पक्षों को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

---

१. प्रवचनसार, २०२
२. जै० शि० सं०, भाग १, ले० सं० ११३
३. पद्मनन्दि कृत पंचविंशतिका, १/४८
४. जै० शि० सं०, भाग १, ले० सं० ५४/६६, १०८/६०, १०५/१६
५. वही, ११३
६. धनञ्जयनाममाला सभाष्य, श्लोक १२४, पृ० १०५
७. जै० शि० सं०, भाग १, ले० सं० १०८/४४
८. वही, १०८/२४, १०८/३०
९. तत्त्वार्थसूत्र, ७/१
१०. सागार-धर्मामृत, २/८०
११. जै० शि० सं०, भाग १, ले० सं० ५४, १०५, १०८
१२. वही, १०८/६०
१३. वही, ५४/८, १०५/५४
१४. वही, ५४/१८
१५. वही, ५४/४
१६. वही, १०५/४६
१७. वही, ५४/१०
१८. वही, ५४/१७
१९. वही, ५४/१७, १०५/५५
२०. वही, ५४/६, ५४/१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org